

देवेन्द्र दीपक के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध आयामों की सामाजिक उपयोगिता

निहारिका शर्मा

शोधार्थी

विषय : हिन्दी साहित्य

जीवाजी विष्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

**शोध-सार**

साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है। साहित्य मनुष्य की रचना है और मनुष्य की दुर्बलताओं को दूर कर उसे आदर्शों के उन्नत सोपानों तक उत्कर्ष प्रदान करने की शुभकामना है। मनुष्य संज्ञा स्त्री और पुरुष दोनों को ही स्वयं में संजोए हुए है। इसलिए साहित्य में भी स्त्रियों और पुरुषों के चरित्र, उनकी विविध विशेषताएँ, आवश्यकताएँ, रुचियाँ, कार्य आदि सदा से अंकित और चर्चित होते रहे हैं, होते रहेंगे।

विष्व साहित्य स्त्री-पुरुषों के संयुक्त चित्रों से अलंकृत है। साहित्य में अच्छे और बुरे-दोनों प्रकार के स्त्री-पुरुषों का आदर्श और यथार्थपरक वर्णन होता रहा है किन्तु भारतीय साहित्य में कभी स्त्री अथवा पुरुष को लेकर अलग से बात करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक पृथक से स्त्री-विमर्श का कोई पृष्ठ नहीं मिलता।

कूटशब्द : दुर्बलता, चरित्र, आवश्यकताएँ, अलंकृत, यथार्थपरक, अनुभव

Paper Received date

05/09/2026

Publishing Date

10/09/2026

DOI
<https://doi.org/10.5281/zenodo.22673716>

**IMPACT
FACTOR
5.924**

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोपीय प्रभाव के कारण भारत में, विशेषतः हिन्दी-साहित्य में स्त्री-विमर्श का शोर सुनायी देता है। वस्तुतः यह शोर स्त्री-पुरुष की समानता के नारे के साथ आस्तित्व में आया है और स्त्री को पुरुष से सर्वथा भिन्न एक अलग स्वतन्त्र इकाई के रूप में दर्शाने की चेष्टा है। समाज और साहित्य के व्यापक धरातल पर स्त्री-पुरुष अभिन्न हैं, सहचर हैं। परिवार में विभिन्न सम्बन्धों के रूप में उनकी भिन्न किन्तु संयुक्त भूमिकाएँ हैं तथापि पाश्चात्य चिन्तकों के प्रभाव की काली छाया में अनेक भारतीय लेखक-लेखिकाओं ने स्त्रियों को पुरुषों से भिन्न, एक प्रथम स्वतन्त्र इकाई के रूप में अंकित कर परिवार मुक्त स्वतन्त्र स्त्री-सत्ता की प्रस्थापना को स्त्री-विमर्श की संज्ञा दी है

स्त्री-विमर्श के नाम पर चर्चित स्त्री लेखिकाएँ क्या लिख रही हैं, इसकी एक बानगी तसलीमा नसरीन की एक तथाकथित कविता 'बचो-बचो' के मुनमुन सरकार कृत हिन्दी अनुवाद में इस प्रकार दृष्टव्य है—

“तुम्हारे पीछे कुत्तों का झुण्ड लगा है

ध्यान रखना, कुत्तों की देह में

होता है रेबीज।

तुम्हारे पीछे मरदों का झुण्ड लगा है

याद रहे

सिफलिस।।¹

तसलीमा नसरीन की ये पक्तियाँ मनुष्यता को प्रश्नांकित करती हैं। क्या सारा पुरुष समाज सारी स्त्रियों के प्रति वही भाव रखता है जो काम-भाव कुत्तों में अपनी मादाओं के लिए है। यद्यपि यह भी कठोर यथार्थ है कि कामासक्त पुरुष स्त्री को वासना पूर्ति का माध्यम मानकर उस पर अत्याचार करता है; बलात्कार करता है जो घोर दण्डनीय अपराध है। तथापि सभी पुरुषों का पशु रूप में रेखांकन नारी-पुरुष के मध्य खाई खोदना है जो व्यक्ति और समाज दोनों के ही हित में नहीं है। भारत में नारी-विमर्श का सूत्र पश्चिम के जिस मार्क्सवादी चिन्तन से आया है उसमें स्त्री-पुरुष की एकात्मता और संयुक्त परिवार में पुरुष और स्त्री की संयुक्त भूमिका के लिए कोई स्थान ही नहीं है। शोषक और शोषित की एकांगी परिकल्पना में तसलीमा और उन जैसे विचार वालों के लिए हर स्त्री शोषित है और हर पुरुष शोषक। सामूहिक स्तर पर मानो स्त्रियों और पुरुषों की दो शत्रु सेनाएँ परस्पर संघर्ष कर विजय प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हैं। यहाँ स्त्री-विमर्श में पुरुष द्वारा स्त्री के सम्मान और संरक्षण का कोई संकेत नहीं है। भारतीय साहित्य का स्त्री-विमर्श इससे भिन्न है। उसमें भी स्त्रियों की अस्मिता, स्वतन्त्रता, स्वायत्तता, शिक्षा, सम्मान, आर्थिक स्वाधीनता आदि विषयों पर पर्याप्त लेखन सुलभ है किन्तु उसमें प्रतिरोध और विरोध के स्थान पर स्त्री की ओर से समर्पण और पुरुष की ओर से उसके पोषण और संरक्षण का विचार प्रधान है। यहाँ स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संघर्ष से अधिक समन्वय को महत्त्व मिला है क्योंकि स्त्री-पुरुष के मध्य संघर्ष से नहीं अपितु समन्वय से ही परिवार और समाज का काम चल सकता है। भारतीय-दृष्टि स्त्री-विमर्श में दोनों को परस्पर पूरक मानती है और पुरुष की अपेक्षा स्त्री की सुरक्षा, सम्मान और शक्ति को अधिक महत्त्व देती है। यहाँ स्त्री पुरुष के अतृप्त असन्तुष्ट तथा व्याकुल जीवन की तृप्ति, सन्तुष्टि और विश्राम है। कामायनी की निम्नांकित पंक्तियाँ भारतीय स्त्री-विमर्श की इस दृष्टि को इस प्रकार प्रकट करती हैं—

“तुम अजस्र वर्षा सुहाग की,

और स्नेह की मधु रजनी

चिर अतृप्त जीवन यदि वा,

तो उसमें सन्तोष बनीं।”²

भारतीय साहित्य में नारी के दो रूप सुलभ हैं। उसका प्रथम रूप पारिवारिक-सामाजिक दायित्वों के निर्वाह को समर्पित माता, बहिन, पत्नी, पुत्री आदि का गृहिणी रूप है जिसमें सीमाएँ हैं, मर्यादाएँ हैं कर्तव्यों के निर्वाह के कंटकाकीर्ण पथ हैं और इन सबके मध्य व्यक्तिगत सुखों-आकांक्षाओं के लिए सीमित अवकाश है। दूसरा रूप अप्सरा का है। पूर्णतया दायित्व मुक्त। न परिवार, न बन्धन, न किसी का कोई नियन्त्रण। यहाँ स्वतन्त्रता ही स्वतन्त्रता है किन्तु यह दायित्व-मुक्ति गृहिणी रूप के बन्धनों से कहीं अधिक उत्पीड़क है। रेडलाइट एरिया की स्त्रियों, बार रूमों में घिरकती नर्तकियाँ पुरुषों

के शोषण की और अधिक शिकार बनती हैं। इसलिए भारतीय समाज में स्त्री का गृहिणी रूप समादृत है। समाज के लिए हर दृष्टि से यह गृहिणी रूप ही श्रेयस्कर भी है क्योंकि मनुष्य की भावी पीढ़ियों का भविष्य इसी पर निर्भर है। इतना अवश्य है कि स्त्री के गृहिणी जीवन में उसकी अस्मिता और सम्मान पर आँच न आए। उसका जीवन सुरक्षित रहे और उसकी आवश्यकताओं की समय पर पूर्ति परिवार-समाज द्वारा हर प्रकार से सुनिश्चित की जाए। भारतीय साहित्य का स्त्री-विमर्श वैदिक काल से आज तक इसी विचार पर केन्द्रित रहा है। डॉ. देवेन्द्र दीपक के स्त्री-विमर्श में भी यही स्वर ध्वनित हैं।

विगत दशकों से हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श का जो तथाकथित आन्दोलन चल रहा है उसमें स्त्री के विरुद्ध होने वाले अन्याय को केन्द्र में रखकर विद्रोह का शोर अधिक है और साहित्य की विगत शताब्दियों से चली आ रही स्त्री चेतना में उसके प्रति श्रद्धा भाव-सम्बलित वन्दनात्मक स्वर प्रबल है। आवश्यकता विद्रोह और वन्दना की उतनी नहीं है जितनी कि स्त्री-पुरुष के मध्य स्वस्थ समन्वयात्मक दृष्टि विकसित करने की है। डॉ. देवेन्द्र दीपक का स्त्री-विमर्श इसी समन्वयात्मक भावभूमि पर विकसित हुआ है। डॉ. दीपक भी स्त्री की स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं और उसे भी उसकी रुचि और सामर्थ्य के अनुरूप कार्य करने का अवसर उपलब्ध कराने का समर्थन करते हैं। स्त्री-विमर्श का कोलाहल तसलीमा नसरीन, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि स्त्री लेखिकाओं के माध्यम से पिछले तीस वर्षों से अस्तित्व में है जबकि डॉ. दीपक की स्त्री-विमर्श विषयक समन्वयवादी चेतना का आलोक इससे बहुत पहले फरवरी, सन् 1965 ईसवी में प्रकाशित 'नया जीवन' पत्रिका के अंक में प्रस्तुत 'श्रीमती कमला चौधरी : एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व' शीर्षक लेख में प्रसारित है। श्रीमती कमला चौधरी ने महात्मा गांधी के निकट सम्पर्क में रहकर देश की राजनीति में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया था। स्वतन्त्रता के लिए जेल यात्राएँ की थीं। उनकी अट्ठावनवीं वर्षगाँठ पर डॉ. दीपक ने यह लेख लिखा था। इसमें एक ओर उनके निर्भीक और कर्मठ नेतृत्व की सामाजिक क्रियाशीलता वर्णित हुई है तो दूसरी ओर उनके निजी पारिवारिक जीवन के दायित्व निर्वाह की चित्रावलियाँ भी प्रस्तुत हुई हैं। उनके सन्दर्भ में डॉ. दीपक ने लिखा है। .. "अनुभव ने बताया है कि जो महिला मंच पर गयी, उसका नाता मैस से कहें घर गृहस्थी के काम-काज से लगभग समाप्त हो जाता है। कहिए कि उसकी गृहस्थी चौपट हो जाती है। वैली बिखर जाती है। मुट्टी खुल जाती है। कमलाजी इसका अपवाद हैं। वे मंच पर रहीं लेकिन मैस को कभी नहीं भूलीं। एक बार उनके निवास स्थान पर पन्द्रह मिनट गुजार आने पर कोई भी व्यक्ति कहेगा कि कमलाजी सद्गृहस्थ हैं, एक आदर्श पत्नी और नीति-निष्ठ माता हैं।" डॉ. दीपक ने श्रीमती कमला देवी चौधरी के जिस समन्वयकारी स्वरूप की सराहना की है। वह उनके स्त्री विषयक विमर्श का महत्वपूर्ण आयाम है। स्त्री उच्च शिक्षा प्राप्त करे, शारीरिक-मानसिक रूप से सशक्त बने, अपनी क्षमताओं, रुचियों और शक्तियों के अनुरूप अपना कार्य-विस्तार करे, इसमें किसी को क्या आपत्ति सकती है? यदि है, तो नहीं होनी चाहिए क्योंकि स्त्री भी पुरुष के समान ही क्षमतावान जीवित इकाई है। उसका अपना मन है। उसके भी अपने अधिकार हैं। अतः उसकी स्वतन्त्रता और स्वायत्तता सभी प्रश्नों से परे है किन्तु यदि इन उपलब्धियों के फेर में पड़कर उसका अपना परिवार टूटता है, छूटता है, बिखरता अथवा नष्ट होता है तब फिर उसकी इन उपलब्धियों का क्या मूल्य है? डॉ. दीपक का स्त्री-विमर्श इस यक्ष-प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करता है और घर-बाहर में सामंजस्य की आवश्यकता रेखांकित करता है। इसी सामंजस्य में उपर्युक्त विमर्श की सार्थकता सन्निहित है।

डॉ. देवेन्द्र दीपक भारतीय सनातन सांस्कृतिक मूल्यों के तर्कशील विचारक हैं। रूढ़ियों के भंजन में उन्हें हिचक नहीं किन्तु अपनी परम्परा के स्वस्थ मान मूल्यों को तथाकथित आधुनिकता की वेदी पर बलिदान करने को वे तत्पर नहीं हैं।

भारतीय नारी द्वारा अपने वैवाहिक जीवन में पतिव्रत धर्म का पालन ऐसी ही सनातन परम्परा है जो एक और गृहस्थ जीवन को स्थायी स्थिरता देती है तो दूसरी ओर स्त्री को व्यभिचार और घातक यौनरोगों से भी बचाती है। इसलिए डॉ. दीपक के साहित्य में नारियाँ पतिव्रत धर्म के पालन में तत्पर हैं। 'भूगोल राजा का खगोल राजा का' रचना में 'कयाधु' और 'सुषेण पर्व' में 'सूर्या' पतिव्रता नारी का उज्ज्वल आदर्श हैं। कयाधु अपने पति हिरणाकुस से असहमत होकर भी उसका विरोध नहीं करती। विद्रोह नहीं करती। सूर्या प्रत्येक स्थिति में पति सुषेण के साथ खड़ी रहती है। उसका संबल बनती है। यही तो आदर्श पतिव्रत है। भारतीय-साहित्य में स्त्री शक्ति का पर्याय है। वह सीता के रूप में अपहृत और द्रौपदी के रूप में पुरुष से अपमानित होती है तो दुर्गा के रूप में महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ आदि का संहार करने की अपार शक्ति से सम्पन्न भी है। 'कामायनी' में नायिका श्रद्धा हारे-थके निराश मनु का संबल बनती है। स्त्री-विमर्श का यह पक्ष हिन्दी-साहित्य में अत्यन्त सशक्त है किन्तु स्त्री-विमर्श को स्त्री-पुरुष संघर्ष के रूप में देखने वाली स्त्री-विमर्श की नकारात्मक वृत्ति इस पक्ष की अनदेखी करती है। डॉ. देवेन्द्र दीपक के स्त्री-विमर्श में स्त्री की बौद्धिक और आत्मिक शक्ति को विशेष रूप से अंकित किया गया है। भारतीय साहित्य में स्त्री अत्यन्त शक्तिमती है। वह पति को प्रेरित करके परिस्थितियों को परिवर्तित करने का सामर्थ्य रखती है। 'भूगोल राजा का खगोल राजा का' रचना में महारानी कयाधु के सन्दर्भ में प्रह्लाद का निम्नांकित कथन उनकी शक्ति को प्रकट करता है। डॉ. दीपक के स्त्री-विमर्श में स्त्री की शक्ति अजस्र है, अजेय है—

"नारी की शक्ति अजस्र

नारी खड़ी हो सकती है

अग्निधारा के सम्मुख

वज्र शिला-सी

मेरी माता

लोकमाता की भूमिका का

करे यदि निर्वाह तो निकल सकती है

कोई न कोई राह।"

हमारी भारतीय-परम्परा में समस्याग्रस्त पुरुष अथवा समाज को यह निर्देशित करने में नारी की भूमिका ही प्रायः प्रेरक रही है। डॉ. देवेन्द्र दीपक ने भी नारी की इस भूमिका को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से अंकित किया है। 'सुषेण पर्व' में सुषेण के अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त होने पर सूर्या ही उन्हें सत्पथ दिखाती है। जब सुषेण को लक्ष्मण का उपचार करने हेतु आमंत्रित किया जाता है तब वे द्वन्द्वग्रस्त हो उठते हैं। एक ओर उनकी राजवैद्य के पद पर नियुक्ति उन्हें लक्ष्मण का उचित उपचार करने से रोकती है तो दूसरी ओर वैद्य का कर्तव्य उन्हें लक्ष्मण के उपचार हेतु प्रेरित करता है। उन्हें अनुभव होता है कि यदि वे आहत लक्ष्मण को स्वस्थ करने का उद्यम करते हैं तो यह उनकी लंकापति रावण के साथ गद्दारी होगी क्योंकि लक्ष्मण लंका के विरुद्ध युद्धरत सेना के अग्रणी सेनानायक हैं और यदि वे लक्ष्मण को स्वस्थ करने हेतु अपने ज्ञान का सदुपयोग नहीं करते हैं तो यह उनका कर्तव्यपालन से पलायन होगा क्योंकि एक वैद्य का प्रथम कर्तव्य बिना किसी भेदभाव के रोगी का उपचार करना है। किंकर्तव्यविमूढ़ सुषेण को उनकी पत्नी सूर्या राह दिखाती हैं। वे तर्कशील हैं और तर्क के धरातल पर अपने पति को निर्णय लेने का परामर्श देती हैं। सूर्या और सुषेण के संवाद में नारी की तार्किकता इस प्रकार स्पष्ट होती है—

“सुषेण—मैं शासकीय अधिकारी !

शत्रु के हित में मेरा

बनना एक साधन

राजद्रोह है।

सूर्या—धर्म और नीति के

विरुद्ध हो जो राजा

उसकी अवज्ञा

राजद्रोह कैसे?

शिखर को निरापद / होना चाहिए

स्वामी !

युद्ध का कारण / नितान्त वैयक्तिक !”⁵

सूर्या की यह तार्किकता प्रभावित करती है। ‘शिखर को निरापद होना चाहिए’ पंक्ति में नारी की विचारशक्ति का दर्शन होता है। द्वंद्वग्रस्त पुरुष (सुषेण) धर्म, न्याय, सत्य और कर्तव्य के जिस पथ को अन्वेषित और निश्चित करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं, वही पथ स्त्री (सूर्या) उन्हें सहज ही सुझा देती है। सूर्या के एक तर्क कि उनका राजा रावण धर्म और नीति के विरुद्ध है। सुषेण को लक्ष्मण के उपचार हेतु सहमत नहीं कर पाता तब वे इससे भी प्रबल एक अन्य तर्क प्रस्तुत करती हैं। निम्नांकित संवाद पुनः नारी की तर्कशीलता को प्रमाणित करता है—

“सुषेण—सूर्या, समझो

मैं राजवैद्य हूँ / राजवैद्य !

राजनिष्ठा सर्वोपरि !

सूर्या—हाँ, हाँ

आप राजवैद्य हैं।

सुषेण—तो फिर?

सूर्या—राजवैद्य से पहले

एक वैद्य आयुर्वेदाचार्य सुषेण !

वैद्य थे।

तो राजवैद्य का पद मिला।”⁶

सूर्या का तर्क अकाट्य है। सुषेण वैद्य पहले हैं, राजवैद्य बाद में। इसी क्रम में उनका वैद्य के रूप में लक्ष्मण के उपचार का कर्तव्य पालन प्रथम स्थान पर है और राजवैद्य के रूप में उनकी राजनिष्ठा का स्थान बाद में है। सूर्या के रूप में डॉ. दीपक ने नारी का ऐसा सशक्त मानसिक विकास प्रस्तुत किया है जिसमें स्त्री अपनी प्रज्ञा से निर्भान्त स्पष्ट निष्कर्ष तक पहुँचती है और अपने पति को कर्तव्य के पालन हेतु प्रेरित करती है—

“सच है

सच के अन्दर का सच

*अपने को रचो**अधर्म से बचो ।**स्वामी, अधर्म से बचो।”*

भारतीय चिन्तन परम्परा में कर्तव्य पालन सर्वोत्तम धर्म है और कर्तव्य से पलायन अधर्म है। घोर पाप है। इसीलिए भारतीय धर्म-साहित्य में कष्ट सहकर भी कर्तव्य की वेदी पर सर्वस्व न्यौछावर करने का सन्देश सर्वत्र निनादित है। वस्तुतः यही समाज के संकटों का समाधान है। यदि व्यक्ति के स्तर पर कर्तव्य का सम्यक् निर्वाह सम्भव हो जाय तो सामाजिक न्याय का पथ स्वतः प्रशस्त बन सकता है। सबको न्याय मिल सकता है। न्यायोचित अधिकार मिल सकता है तथा समष्टि का जीवन सहज सुखमय बन सकता है। सूर्या के शब्दों में सुषेण को कराया गया यह कर्तव्य-बोध डॉ. दीपक के रचनाकर्म का मर्म है। ‘स्वयं को रचना’ जीवन में दायित्वों का निर्वाह करना है और ‘अधर्म से बचना’ अपने और अन्य के जीवन को सुखमय बनाना है। भारतीय साहित्य में पुरुष को उसके कर्तव्य के प्रति सचेत और प्रेरित करने की यह परम्परा नारी-विमर्श का महत्त्वपूर्ण अंग है। महाभारत में राजमाता विदुला और कुन्ती अपने पुत्रों को कर्तव्य पालन हेतु युद्धार्थ प्रस्तुत होने की प्रेरणा देती हैं। ‘कामायनी’ की श्रद्धा का मनु के मन में आशा का संचार करना इसी प्रज्ञा-परम्परा का प्रवाह है और ‘सुषेण-पर्व’ में सूया की सुषेण को प्रेरणा पुनः इसी प्रवाह को गति देकर हिन्दी साहित्य में नारी के बौद्धिक सामर्थ्य को रेखांकित करती है।

सन्दर्भ सूची

1. तसलीमा नसरीन की कविताएँ (पृष्ठ 14) (वाणी प्रकाशन संस्करण 1998)
2. कामायनी पृष्ठ 58
3. पुरवैया (व्यक्तित्व अंक, सितम्बर, 2007), पृष्ठ 12
4. भूगोल राजा का खगोल राजा का, पृष्ठ 56
5. सुषेण पर्व, पृष्ठ 59
6. सुषेण पर्व, पृष्ठ 59-60
7. सुषेण पर्व, पृष्ठ 60